"वाह रे जिन्दगी"

पी.के. मिश्र
वैज्ञा. 'बी'
रा.ज.सं., रूड़की

अक्सर एक सवाल
कतराती है मेरी ख्याल
क्यूं मिली मंजिल
ना कोई चिराग ना मशाल।।

बचपन बीता चंद साल
है एक गांव नन्हा कमाल
घिरा हो जिसका हर एक तल
नदी, नालों, पुकुर कमल।।

गांव छोड़ा था उम्र दस
जिन्दगी शुरू की तन्हा और बेवश
पढ़ाई के नाम दूर निकला
अक्सर तन्हा अकेला–अकेला।।

देखा है इंसान लड़ते–झगड़ते
कभी मज़हब कभी जमीन को ले के
देखा है इंसान अक्सर भागते
पैसा कभी हसीनों के वास्ते।।

मैं भी एक इंसान हूं!

कुछ साल दौड़ा एक चेहरे के पीछे
अक्सर अकेला, ना कोई आगे ना कोई पीछे।।

खुदा जाने क्या थी मज़बूरी
रखा एक फांसला हरदम हमसे

सांसों का फूलना देख
मोड़ा जिन्दगी देश–विदेश
बची अब एक ही ख्वाइश
कब पूरी हो जीवन की रेस।।

पर अब भी हंसता है वही सवाल
क्यूं मिली मंजिल
ना कोई चिराग न कोई मशाल।।